सम्यक् दर्शन

• *श्रमण संघीय महामंत्री श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'*

सम्पक् दर्शन का अर्थ है, 'यथार्थ समझ' समझ जीवन का नियामक और प्रेरक तत्व है। समझने की क्षमता मानव जीवन की सब से बड़ी उपलब्धि है। हम अनन्त जीवन यात्रा के पथिक हैं अनेकों विभिन्न भवों से होकर हम आये, उनमें अधिक समय तो बेसमझी का ही रहा। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जन्मों में भी अनेक बार 'असंज्ञी' अर्थात बेमन के रहे। एकेन्द्रिय योग्यता भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुई। बहुत लम्बा समय तो ऐसा रहा जब हम विकलेन्द्रिय थे, पार्थिथ दृष्टि से भी अपूर्ण थे। प्रत्येक नवीन इन्द्रिय की उपलब्धि जीवन के लिए बड़ी चीज थी तो मन की संप्राप्ति के लिए कहना ही क्या? मन आत्मा की अन्तिम पार्थिव उपलब्धि है। और यह तमाम उपलविधयों से अनुपम भी है। मन के सहारे ही आत्मा समझने का कार्य किया करती है। अभी हम 'संज्ञी' हैं। 'संज्ञी' ही समझने की योग्यता रखते हैं। आज हम जो कुछ हैं उस स्थिति को तुच्छ न समझें वस्तुतः हमारी यह स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण है। अब एकमात्र आवश्यकता है इस महान उपलब्धि के सदुपयोग की।

हमारे सम्पूर्ण जीवन में सर्वाधिक महत्व की वस्तु हमारी समझने की योग्यता है अतः उसका ही सर्वाधिक सदुपयोग करने की आवश्यकता है। हम यदि नाशवान तुच्छ पदार्थों को समझने का ही प्रयत्न कर रहे हैं तो यह निश्चित बात है कि भटक रहे हैं। हमें सम्पूर्ण रूप से सजग होकर 'परमार्थ' को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

अनेक व्यक्ति 'परमार्थ' के नाम से चौकते हैं वे समझते हैं कि परमार्थ कोई अलौकिक रहस्यात्मक व्याख्याएं हैं, जिन्हें समझ नहीं सकते, किन्तु ऐसी बात नहीं हैं, न परमार्थ कोई अलौकिक तत्व हैं। और न कोई रहस्यात्मक व्याख्या है। परमार्थ तो 'वस्तुस्थिति' है। जो जहां हैं और जैसा है उसको वहीं वैसा ही समझना परमार्थ है। परमार्थ की समझ ही 'सम्पक् दर्शन' है।

षडद्रव्य - इस विश्व में अन्तिम रूप से छह पदार्थ उपस्थित हैं। धर्म, अर्थ आकाश, काल, आत्मा और पुद्गल।

धर्म-अधर्म - धर्म-अधर्म, कर्तव्य और भावना के रूप में तो सर्वत्र मान्य हैं किन्तु पदार्थ (द्रव्य) के रूप में इनकी मान्यता जिन शासन में ही है। द्रव्य के रूप में धर्म अधर्म का स्वरूप जिनशासन में सचमुच निराला ही है।

जिन शासन की मान्यता है कि विश्व में समस्त पदार्थ जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति करते हैं यद्यपि गत्यात्मक धर्म उनमें है किन्तु विश्व नियम के अनुसार निमित्त के बिना उपादान पूर्णतया सार्थक और सक्रिय नहीं हो सकता इसी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक पदार्थ जो स्वयं गत्यात्मकता रखता है, उसे निमित्त रूप से एक सहयोगी तत्व की आवश्यकता है, वह सहयोगी तत्व धर्म हैं, सम्पूर्ण विश्व तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्तृत यह अमूर्त तत्व बड़ा अद्भुत है उसमें किसी वर्ण गंध रस स्पर्श का अस्तित्व नहीं है। विश्वान्त तक फैले स्थूल सूक्ष्म सभी तरह के पदार्थों की गत्यात्मकता को सार्थकता प्रदान करने वाला धर्म तत्व निर्जीव जड़ स्वरूप है, इसके अस्तित्व को सिद्ध करना नितान्त असंभव है, केवल सर्वज्ञ वचन होने से श्रद्धा सहित इसे स्वीकार करना चाहिये।

आधुनिक वैज्ञानिक 'ईथर' नामक एक ऐसा पदार्थ अवश्य मानते हैं जिसका स्वरूप 'धर्म' से मिलता है यह 'धर्म' द्रव्य जिन शासन में 'धर्मास्तिकाय' के नाम से प्रसिद्ध है।

अस्ति से तात्पर्य उसी के विभिन्न घटक 'देश-प्रदेश' छोटे बड़े हिस्से से लिया जाता है। काय का अर्थ समूह है।

धर्म की तरह ही एक द्रव्य है 'अधर्म' इसका अर्थ है पदार्थ के स्थितिकरण में सहयोग देने वाला द्रव्य। यह भी धर्म की तरह अमूर्त विश्व व्यापी वर्ण, गंध, रस स्पर्श आदि से रहित है।

आकाश काल - संसार में विद्यमान छह द्रव्यों में से तीसरे द्रव्य का नाम आकाश है, यह भी लोक व्यापी अमूर्त वर्णादि से रहित तथा नित्य है। यह पदार्थों को अवगाहन (अवकाश) अपने में स्थित होने का स्थान प्रदान करता है। विश्वगत सभी पदार्थ आकाश में ही अवस्थित है।

काल भी एक द्रव्य है यह द्रव्य सभी पदार्थों के परिणामन, परिवर्तन में सहयोगी होता है। यह भी अरूपी वर्ण गंधादि से रहित है, इसका अस्तित्व क्षेत्र केवल उतना ही है जहाँ तक मानवों का निवास है। मानवेतर स्थानों पर इसका अस्तित्व नहीं क्योंकि मात्र मानव ही समय (काल) का प्रयोग करते हैं। अन्य प्राणियों में काल द्रव्य के उपयोग की क्षमता नहीं।

आत्मा - विश्वगत मौलिक पदार्थों में पांचवां द्रव्य 'आत्मा' है षड्द्रव्यों में केवल यह द्रव्य ही चेतना सम्पन्न है। अनुभव की सत्ता भी इसके ही पास है। यद्यपि यह भी रूप, वर्ण, गंधादि से रहित है किन्तु रूपी पदार्थ तथा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि के उपयोग की क्षमता भी केवल इसके ही पास है। सम्पूर्ण विश्व में जीवन द्रव्य व्याप्त है, किन्तु यह एक नहीं है। केवल कुछ निगोर योनियों को छोड़कर सर्वत्र एक शरीर एक जीव है। प्रत्येक आत्मा का मौलिक स्वरूप एक ही तरह का होता है, किन्तु फिर भी परस्पर सभी आत्माएं भिन्न हैं। सभी आत्माएं केवल अपने कृत कर्मों के प्रति उत्तरदायी है। उन्हें अपने कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है। आत्मा अन्य द्रव्यों की तरह आनन्तिक सत्ता वाला पदार्थ केवल पार्यायिक होता है, मौलिक नहीं। जैसे डालियों के इधर-उधर झूमते रहने पर भी वृक्ष का मूल जहाँ का तहाँ बना रहता है। यही स्थिति जीव की है। जीवन में अन्य कितने ही परिवर्तन क्यों न हो किन्तु उसके जीवत्व में नित्यत्व में और उसके निज स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आता यही कारण है कि जिन शासन में पतित से पतित प्राणी भी कभी-कभी अपना आत्मोत्थान साधकर महान ही नहीं महानतम बन जाता है। यदि अर्जुन माली के क्रूर परिणामों के साथ यदि उसकी आत्मा भी सम्पूर्ण रूप से बदल जाती तो वह महावीर के संपर्क में आकर भी कदापि नहीं सुधरता किन्तु ऐसा न हुआ न हो ही सकता है।

जीव द्रव्य का अपना स्वभाव अविनाशी है वह दब जायेगा पापों से किन्तु नष्ट कदापि नहीं होगा।

जीव द्रव्य की स्वतन्त्रता सत्ता के साथ इसके स्वरूप का जो विवेचन जिन शासन में, वह सचमुच अद्भुत और मनन करने के योग्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन शासन वर्णित जीव द्रव्य की विवेचना जानकर या बढ़कर व्यक्ति में अनायास ही नये विश्वास का जन्म हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में परमात्मा बनने की योग्यता बताकर जिनशासन ने सभी प्राणियों में एक नया उत्साह पैदा कर दिया।

विश्व में सर्वदा स्थित षडद्रव्यों में अन्तिम द्रव्य पुद्गल है पुद्गल दृश्यमान अजीब पदार्थ हैं। यह अमुभव सत्ता से रहित किन्तु वर्ण, गंध, रस स्पर्श आदि को यही धारण करता है। सत्य तो यह है कि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि का उदय भी पुद्गलों से होता है। पुद्गल को 'इंगलिश' में 'मैटेरियल' कहा जा सकता है। इसका अन्तिम सूक्ष्म अंश परमाणु कहलाता है।

परमाणुओं का समूह ही स्कन्ध है स्कन्ध अर्थात पदार्थ पिण्ड भौतिक रचना का आधार वह अजीब पुद्गल द्रव्य ही है। इसमें भी लगातार परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। किन्तु इसका मूर्तत्व आजीवत्य वर्णत्व, गंधत्व आदि इसके मौलिक गुण भी नष्ट नहीं होते।

विश्व में उपर्युक्त मात्र षडद्रव्य ही हैं इनमें भी मुख्यतया जीव और पुद्गल ही हमें प्रतीत होते हैं शेष चार द्रव्य तो प्रतीत ही नहीं होते।

कर्मवाद - सम्यक् दर्शन जिसका कि जिन शासन में सर्वाधिक महत्व है वह इन षडद्रव्यों को यथोचित समझने और स्वीकारने पर ही बन पाता है।

विश्वगत तमाम उपलब्धियों में सर्वाधिक कठिन उपलब्धि सम्पक् समझ है। धर्म अधर्म, आकाश, काल जो कि अमूर्त और अप्रभावक है। उनको छोड़ भी दे तो भी आत्मा और पुद्गल के विषय में हमारे यहाँ व्यापक भ्रांतियाँ हैं। कोई इन्हें परमात्मा की देन मानते हैं तो इन्हें मरमात्मा के हाथ के खिलौने, किन्तु वास्तव में ये इस विश्व में स्वतन्त्र द्रव्य हैं जो नितान्त अनादि है। सब की अपनी सत्ता है।

एक प्रश्न है कि यदि ये स्वतन्त्र द्रव्य है तो आत्मा को विभिन्न सुख दुःखों का अनुभव कैसे होता है? इस प्रश्न का समाधान यह है कि आत्मा अपने विकृत परिणामों से कर्म संग्रह करता है, उनका उदय है। आत्मा में सुख दुःखों का सर्जन करता है। यद्यपि कर्म पुद्गल स्वयं अजीब हैं किन्तु चेतना का संपर्क होने पर उसमें प्रभावकता आ जाती है। सुख दुःख के लिए किसी परमात्मा के कर्तव्य को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण स्वरूप समझिए कि कोई व्यक्ति भांग पीता है और वह पागल सा बन जाता है तो भांग अजीब ही है किन्तु चेतना को प्रभावित कर उसे पगला देती है। कर्म अजीब है किन्तु आत्मा में सुख दुःख पैदा करने में स्वयं सक्षम है इसके लिए किसी परमात्म व्यवस्था की आवश्यकता नहीं।

निर्देशन - सम्यक् दर्शन अर्थात यथार्थ धारणायें, देव, गुरु, धर्म, जीव, जगत के प्रति यथार्थ निश्चय की स्थिति ही सम्यक् दर्शन है। अतः जीवन के वास्तविक साफल्य के लिए आत्मा षडद्रव्य कर्म, लोक, देह, जीव सम्बन्ध आदि विषयों में स्पष्ट और असंदिग्ध निश्चय हो जाना चाहिये। प्रस्तुत निबन्ध में इतने सारे विषयों का वर्णन संभव नहीं। अतः पाठकों, जिज्ञासुओं को सत्पुरुषों, ज्ञानियों का संपर्क कर तथा स्वाध्याय द्वारा अपने अज्ञान अन्धेरे को नष्ट कर सत्य स्वरूप विस्तार के साथ समझना चाहिये।

* * * * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org